निर्मल वर्मा

(सन् 1929-2005)

निर्मल वर्मा का जन्म शिमला (हिमाचल प्रदेश) में हुआ। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफेंस कालेज से इतिहास में एम.ए. किया और अध्यापन कार्य करने लगे। चेकोस्लोवाकिया के प्राच्य-विद्या संस्थान प्राग के निमंत्रण पर सन् 1959 में वहाँ गए और चेक उपन्यासों तथा कहानियों का हिंदी अनुवाद किया।

*निर्मल वर्मा को हिंदी के समान ही अंग्रेज़ी पर भी अधिकार प्राप्त था। उन्होंने **टाइम्स ऑफ़ इंडिया** तथा **हिंदुस्तान टाइम्स** के लिए यूरोप की सांस्कृतिक एवं राजनीतिक समस्याओं पर अनेक लेख और रिपोर्ताज लिखे हैं जो उनके निबंध संग्रहों में संकलित हैं। सन् 1970 में वे भारत लौट आए और स्वतंत्र लेखन करने लगे।*

*निर्मल वर्मा का मुख्य योगदान हिंदी कथा-साहित्य के क्षेत्र में है। वे नयी कहानी आंदोलन के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर माने जाते हैं। **परिंदे, जलती झाड़ी, तीन एकांत, पिछली गरमियों में, कव्वे और काला पानी, बीच बहस में, सूखा तथा अन्य कहानियाँ** आदि कहानी-संग्रह और **वे दिन, लाल टीन की छत, एक चिथड़ा सुख** तथा **अंतिम अरण्य** उपन्यास इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। **रात का रिपोर्टर** जिस पर सीरियल तैयार किया गया है, उनका उपन्यास है। **हर बारिश में, चीड़ों पर चाँदनी, धुंध से उठती धुन** में उनके यात्रा-संस्मरण संकलित हैं। **शब्द और स्मृति** तथा **कला का जोखिम** और **ढलान से उतरते हुए** उनके निबंध-संग्रह हैं, जिनमें विविध विषयों का विवेचन मिलता है। सन् 1985 में **कव्वे और काला पानी** पर उनको **साहित्य अकादमी पुरस्कार** मिला। इसके अतिरिक्त उन्हें कई अन्य पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया।*

निर्मल वर्मा की भाषा-शैली में एक ऐसी अनोखी कसावट है, जो विचार-सूत्र की गहनता को विविध उद्धरणों से रोचक बनाती हुई विषय का विस्तार करती है। शब्दचयन में जटिलता न होते हुए भी उनकी वाक्य-रचना में मिश्र और संयुक्त वाक्यों की प्रधानता है। स्थान-स्थान पर उन्होंने उर्दू और अंग्रेज़ी के शब्दों का स्वाभाविक प्रयोग किया है, जिससे उनकी भाषा-शैली में अनेक नवीन प्रयोगों की झलक मिलती है।
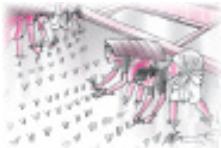
जहाँ कोई वापसी नहीं यात्रा-वृत्तांत ***धुंध से उठती धुन*** संग्रह से लिया गया है। उसमें लेखक ने पर्यावरण-संबंधी सरोकारों को ही नहीं, विकास के नाम पर पर्यावरण-विनाश से उपजी विस्थापन संबंधी मनुष्य की यातना को भी रेखांकित किया है। लेखक का यह मानना है कि अंधाधुंध विकास और पर्यावरण संबंधी सुरक्षा के बीच संतुलन होना चाहिए, नहीं तो विकास हमेशा विस्थापन और पर्यावरण संबंधी समस्याओं को जन्म देता रहेगा और मनुष्य अपने समाज, संस्कृति और परिवेश से विस्थापित होकर जीवन जीने के लिए विवश होता रहेगा।

औद्योगिक विकास के दौर में आज प्राकृतिक सौंदर्य किस तरह नष्ट होता जा रहा है, इसका मार्मिक चित्रण इस पाठ में किया गया है। यह पाठ विस्थापितों की अनेक समस्याओं का हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करता है। इस सत्य को भी उद्घाटित करता है कि आधुनिक औद्योगीकरण की आँधी में सिर्फ़ मनुष्य ही नहीं उखड़ता, बल्कि उसका परिवेश, संस्कृति और आवास-स्थल भी हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं।

जहाँ कोई वापसी नहीं

सिंगरौली – 1983

वह धान रोपाई का महीना था–जुलाई का अंत–जब बारिश के बाद खेतों में पानी जमा हो जाता है। हम उस दुपहर सिंगरौली के एक क्षेत्र–नवागाँव गए थे। इस क्षेत्र की आबादी पचास हज़ार से ऊपर है, जहाँ लगभग अठारह छोटे-छोटे गाँव बसे हैं। इन्हीं गाँवों में एक का नाम है–अमझर–आम के पेड़ों से घिरा गाँव–जहाँ आम झरते हैं। किंतु पिछले दो-तीन वर्षों से पेड़ों पर सूनापन है, न कोई फल पकता है, न कुछ नीचे झरता है। कारण पूछने पर पता चला कि जब से सरकारी घोषणा हुई है कि अमरौली प्रोजेक्ट के अंतर्गत नवागाँव के अनेक गाँव उजाड़ दिए जाएँगे, तब से न जाने कैसे, आम के पेड़ सूखने लगे। आदमी उजड़ेगा, तो पेड़ जीवित रहकर क्या करेंगे?
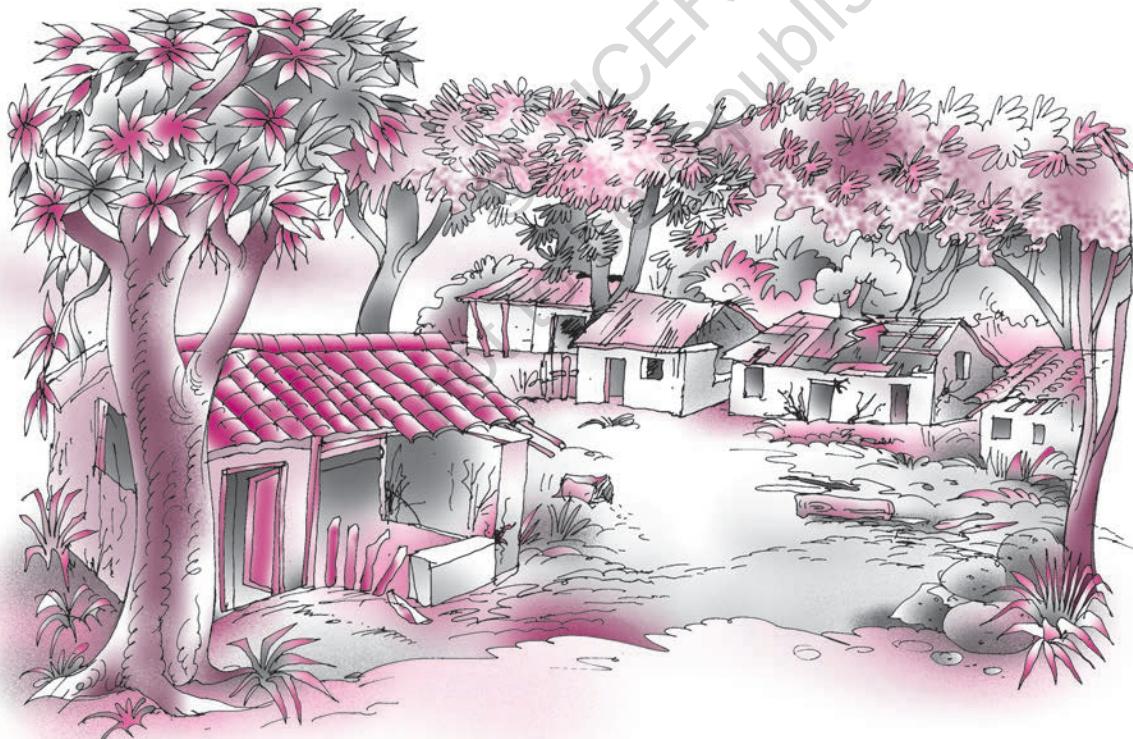
टिहरी गढ़वाल में पेड़ों को बचाने के लिए आदमी के संघर्ष की कहानियाँ सुनी थीं, किंतु मनुष्य के विस्थापन के विरोध में पेड़ भी एक साथ मिलकर मूक सत्याग्रह कर सकते हैं, इसका विचित्र अनुभव सिर्फ़ सिंगरौली में हुआ।

मेरे लिए एक दूसरी दृष्टि से भी यह अनूठा अनुभव था। लोग अपने गाँवों से विस्थापित होकर कैसी अनाथ, उन्मूलित ज़िंदगी बिताते हैं, यह मैंने हिंदुस्तानी शहरों के बीच बसी मज़दूरों की गंदी, दम घुटती, भयावह बस्तियों और स्लम्स में कई बार देखा था, किंतु विस्थापन से पूर्व वे कैसे परिवेश में रहते होंगे, किस तरह की ज़िंदगी बिताते होंगे, इसका दृश्य अपने स्वच्छ, पवित्र खुलेपन में पहली बार अमझर गाँव में देखने को मिला। पेड़ों के घने झुरमुट, साफ़-सुथरे खप्पर लगे मिट्टी के झोंपड़े और पानी। चारों तरफ़ पानी। अगर मोटर-रोड की भागती बस की खिड़की से देखो, तो लगेगा जैसे समूची ज़मीन एक झील है, एक अंतहीन सरोवर, जिसमें पेड़, झोंपड़े, आदमी, ढोर-डाँगर आधे पानी में, आधे ऊपर तिरते दिखाई देते हैं, मानो किसी बाढ़ में सब कुछ डूब गया हो, पानी में धँस गया हो।
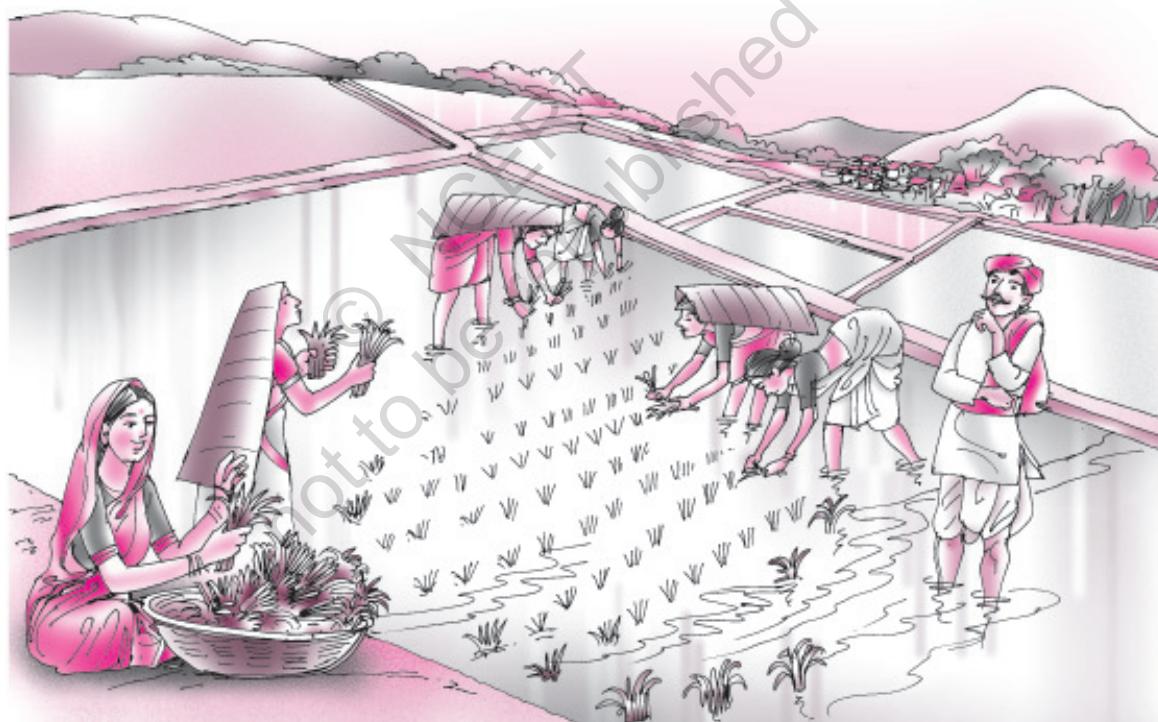
किंतु यह भ्रम है... यह बाढ़ नहीं, पानी में डूबे धान के खेत हैं। अगर हम थोड़ी सी हिम्मत बटोरकर गाँव के भीतर चलें, तब वे औरतें दिखाई देंगी जो एक पाँत में झुकी हुई धान के पौधे छप-छप पानी में रोप रही हैं; सुंदर, सुडौल, धूप में चमचमाती काली टाँगें और सिरों पर चटाई के
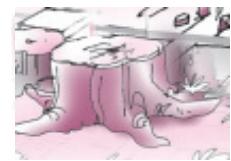
किश्तीनुमा हैट, जो फ़ोटो या फ़िल्मों में देखे हुए वियतनामी या चीनी औरतों की याद दिलाते हैं। ज़रा-सी आहट पाते ही वे एक साथ सिर उठाकर चौंकी हुई निगाहों से हमें देखती हैं—बिलकुल उन युवा हिरणियों की तरह, जिन्हें मैंने एक बार कान्हा के वन्यस्थल में देखा था। किंतु वे डरतीं नहीं, भागतीं नहीं, सिर्फ़ विस्मय से मुसकुराती हैं और फिर सिर झुकाकर अपने काम में डूब जाती हैं... यह समूचा दृश्य इतना साफ़ और सजीव है—अपनी स्वच्छ मांसलता में इतना संपूर्ण और शाश्वत—कि एक क्षण के लिए विश्वास नहीं होता कि आने वाले वर्षों में सब कुछ मटियामेट हो जाएगा—झोंपड़े, खेत, ढोर, आम के पेड़—सब एक गंदी, 'आधुनिक' औद्योगिक कॉलोनी की ईंटों के नीचे दब जाएगा—और ये हँसती-मुसकुराती औरतें, भोपाल, जबलपुर या बैढ़न की सड़कों पर पत्थर कूटती दिखाई देंगी। शायद कुछ वर्षों तक उनकी स्मृति में अपने गाँव की तसवीर एक स्वप्न की तरह धुँधलाती रहेगी, किंतु धूल में लोटते उनके बच्चों को तो कभी मालूम भी नहीं होगा कि बहुत पहले उनके पुरखों का गाँव था—जहाँ आम झरा करते थे।

ये लोग आधुनिक भारत के नए 'शरणार्थी' हैं, जिन्हें औद्योगीकरण के झंझावात ने अपनी घर-ज़मीन से उखाड़कर हमेशा के लिए निर्वासित कर दिया है। प्रकृति और इतिहास के बीच यह गहरा अंतर है। बाढ़ या भूकंप के कारण लोग अपना घरबार छोड़कर कुछ अरसे के लिए ज़रूर बाहर चले जाते हैं, किंतु आफत टलते ही वे दोबारा अपने जाने-पहचाने परिवेश में लौट भी आते हैं। किंतु विकास और प्रगति के नाम पर जब इतिहास लोगों को उन्मूलित करता है, तो वे फिर कभी अपने घर वापस नहीं लौट सकते। आधुनिक औद्योगीकरण की आँधी में सिर्फ़ मनुष्य ही नहीं उखड़ता, बल्कि उसका परिवेश और आवास स्थल भी हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं।

एक भरे-पूरे ग्रामीण अंचल को कितनी नासमझी और निर्ममता से उजाड़ा जा सकता है, सिंगरौली इसका ज्वलंत उदाहरण है। अगर यह इलाका उजाड़ रेगिस्तान होता तो शायद इतना क्षोभ नहीं होता; किंतु सिंगरौली की भूमि इतनी उर्वरा और जंगल इतने समृद्ध हैं कि उनके सहारे शताब्दियों से हज़ारों वनवासी और किसान अपना भरण-पोषण करते आए हैं। 1926 से पूर्व यहाँ खैरवार जाति के आदिवासी राजा शासन किया करते थे, किंतु बाद में सिंगरौली का आधा हिस्सा, जिसमें उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के खंड शामिल थे, रीवाँ राज्य के भीतर शामिल कर लिया गया। बीस वर्ष पहले तक समूचा क्षेत्र विंध्याचल और कैमूर के पहाड़ों और जंगलों से घिरा हुआ था, जहाँ अधिकांशत: कत्था, महुआ, बाँस और शीशम के पेड़ उगते थे। एक पुरानी दंतकथा के अनुसार सिंगरौली का नाम ही 'सृंगावली' पर्वतमाला से निकला है, जो पूर्व-पश्चिम में फैली है। चारों ओर फैले घने जंगलों के कारण यातायात के साधन इतने सीमित थे कि एक ज़माने में सिंगरौली अपने अतुल प्राकृतिक सौंदर्य के बावजूद-'काला पानी' माना जाता था, जहाँ न लोग भीतर आते थे, न बाहर जाने का जोखिम उठाते थे।
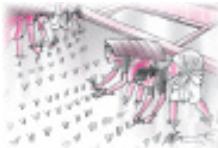
किंतु कोई भी प्रदेश आज के लोलुप युग में अपने अलगाव में सुरक्षित नहीं रह सकता। कभी-कभी किसी इलाके की संपदा ही उसका अभिशाप बन जाती है। दिल्ली के सत्ताधारियों और उद्योगपतियों की आँखों से सिंगरौली की अपार खनिज संपदा छिपी नहीं रही। विस्थापन की एक लहर रिहंद बाँध बनने से आई थी, जिसके कारण हज़ारों गाँव उजाड़ दिए गए थे। इन्हीं नयी योजनाओं के अंतर्गत सेंट्रल कोल फील्ड और नेशनल सुपर थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन का निर्माण हुआ। चारों तरफ़ पक्की सड़कें और पुल बनाए गए। सिंगरौली, जो अब तक अपने सौंदर्य के कारण 'बैकुंठ' और अपने अकेलेपन के कारण 'काला पानी' माना जाता था, अब प्रगति के मानचित्र पर राष्ट्रीय गौरव के साथ प्रतिष्ठित हुआ। कोयले की खदानों और उनपर आधारित ताप विद्युत गृहों की एक पूरी श्रृंखला ने पूरे प्रदेश को अपने में घेर लिया। जहाँ बाहर का आदमी फटकता न था, वहाँ केंद्रीय और राज्य सरकारों के अफ़सरों, इंजीनियरों और विशेषज्ञों की कतार लग गई। जिस तरह ज़मीन पर पड़े शिकार को देखकर आकाश में गिद्धों और चीलों का झुंड मँडराने लगता है, वैसे ही सिंगरौली की घाटी और जंगलों पर ठेकेदारों, वन-अधिकारियों और सरकारी कारिंदों का आक्रमण शुरू हुआ।

विकास का यह 'उजला' पहलू अपने पीछे कितने व्यापक पैमाने पर विनाश का अंधेरा लेकर आया था, हम उसका छोटा-सा जायज़ा लेने दिल्ली में स्थित 'लोकायन' संस्था की ओर से सिंगरौली गए थे। सिंगरौली जाने से पहले मेरे मन में इस तरह का कोई सुखद भ्रम नहीं था कि औद्योगीकरण का चक्का, जो स्वतंत्रता के बाद चलाया गया, उसे रोका जा सकता है। शायद पैंतीस वर्ष पहले हम कोई दूसरा विकल्प चुन सकते थे, जिसमें मानव सुख की कसौटी भौतिक लिप्सा न होकर जीवन की ज़रूरतों द्वारा निर्धारित होती। पश्चिम जिस विकल्प को खो चुका था भारत में उसकी संभावनाएँ खुली थीं, क्योंकि अपनी समस्त कोशिशों के बावजूद अंग्रेज़ी राज हिंदुस्तान को संपूर्ण रूप से अपनी 'सांस्कृतिक कॉलोनी' बनाने में असफल रहा था।
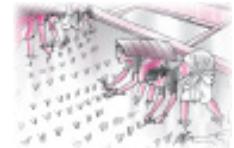
भारत की सांस्कृतिक विरासत यूरोप की तरह म्यूज़ियम्स और संग्रहालयों में जमा नहीं थी—वह उन रिश्तों से जीवित थी, जो आदमी को उसकी धरती, उसके जंगलों, नदियों—एक शब्द में कहें—उसके समूचे परिवेश के साथ जोड़ते थे। अतीत का समूचा मिथक संसार पोथियों में नहीं, इन रिश्तों की अदृश्य लिपि में मौजूद रहता था। यूरोप में पर्यावरण का प्रश्न मनुष्य और भूगोल के बीच संतुलन बनाए रखने का है—भारत में यही प्रश्न मनुष्य और उसकी संस्कृति के बीच पारंपरिक संबंध बनाए रखने का हो जाता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यह नहीं है कि शासक वर्ग ने औद्योगीकरण का मार्ग चुना, ट्रेजेडी यह रही है कि पश्चिम की देखादेखी और नकल में योजनाएँ बनाते समय—प्रकृति, मनुष्य और संस्कृति के बीच का नाजुक संतुलन किस तरह नष्ट होने से बचाया जा सकता है—इस ओर हमारे पश्चिम-शिक्षित सत्ताधारियों का ध्यान कभी नहीं गया। हम बिना पश्चिम को मॉडल बनाए, अपनी शर्तों और मर्यादाओं के आधार पर, औद्योगिक विकास का भारतीय स्वरूप निर्धारित कर सकते हैं, कभी इसका खयाल भी हमारे शासकों को आया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता।

—(सिंगरौली: 'जहाँ कोई वापसी नहीं' का संपादित अंश)

प्रश्न-अभ्यास

1. अमझर से आप क्या समझते हैं? अमझर गाँव में सूनापन क्यों है?
2. आधुनिक भारत के 'नए शरणार्थी' किन्हें कहा गया है?
3. प्रकृति के कारण विस्थापन और औद्योगीकरण के कारण विस्थापन में क्या अंतर है?
4. यूरोप और भारत की पर्यावरण संबंधी चिंताएँ किस प्रकार भिन्न हैं?
5. लेखक के अनुसार स्वातंत्र्योत्तर भारत की सबसे बड़ी 'ट्रैजेडी' क्या है?
6. औद्योगीकरण ने पर्यावरण का संकट पैदा कर दिया है, क्यों और कैसे?
7. क्या स्वच्छता अभियान की ज़रूरत गाँव से ज़्यादा शहरों में है? (विस्थापित लोगों, मज़दूर बस्तियों, स्लमस क्षेत्रों, शहरों में बसी झुग्गी बस्तियों के संदर्भ में लिखिए।)
8. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए।
   (क) आदमी उजड़ेंगे तो पेड़ जीवित रहकर क्या करेंगे?
   (ख) प्रकृति और इतिहास के बीच यह गहरा अंतर है?
9. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
   (क) आधुनिक शरणार्थी
   (ख) औद्योगीकरण की अनिवार्यता
   (ग) प्रकृति, मनुष्य और संस्कृति के बीच आपसी संबंध
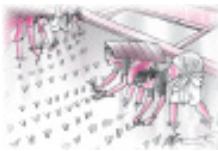
10. निम्नलिखित पंक्तियों का भाव-सौंदर्य लिखिए–
    (क) कभी-कभी किसी इलाके की संपदा ही उसका अभिशाप बन जाती है।
    (ख) अतीत का समूचा मिथक संसार पोथियों में नहीं, इन रिश्तों की अदृश्य लिपि में मौजूद रहता था।

भाषा-शिल्प

1. पाठ के संदर्भ में निम्नलिखित अभिव्यक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए–
   मूक सत्याग्रह, पवित्र खुलापन, स्वच्छ मांसलता, औद्योगीकरण का चक्का, नाज़ुक संतुलन
2. इन मुहावरों पर ध्यान दीजिए–
   मटियामेट होना, आफत टलना, न फटकना
3. 'किंतु यह भ्रम है ······· डूब जाती हैं।' इस गद्यांश को भूतकाल की क्रिया के साथ अपने शब्दों में लिखिए।

योग्यता-विस्तार

1. विस्थापन की समस्या से आप कहाँ तक परिचित हैं। किसी विस्थापन संबंधी परियोजना पर रिपोर्ट लिखिए।
2. लेखक ने दुर्घटनाग्रस्त मज़दूरों को अस्पताल पहुँचाने में मदद की है। आपकी दृष्टि में दुर्घटना-राहत और बचाव कार्य के लिए क्या-क्या करना चाहिए?
3. अपने क्षेत्र की पर्यावरण संबंधी समस्याओं और उनके समाधान हेतु संभावित उपायों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

शब्दार्थ और टिप्पणी

विस्थापन	–	अपने निवास स्थान से बलपूर्वक हटाना, उजाड़ना
उन्मूलित	–	अपने मूल से कटना
शाश्वत	–	निरंतर, कभी न मिटने वाला
झंझावात	–	मुसीबत, परेशानी
लोलुप	–	लालची
चक्का	–	चक्र, मिट्टी का ढेला, गाड़ी का पहिया